

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 6: ऋषभदेव का प्रयाण

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



परम आत्मा में पूर्णतया लीन, भगवान् ऋषभदेव दक्षिण के वनों में एक मौन विरक्त के रूप में विचरण करते हैं और, योगियों को देह-त्याग की कला सिखाते हुए, अपने मर्त्य शरीर को त्याग देते हैं — उनकी महिमा गुप्त, उनकी शान्ति अखण्ड।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को मानव-जीवन के प्रयोजन पर महान् उपदेश दिया, अपने पुत्र भरत का राज्याभिषेक किया, और एक मौन विचरणशील अवधूत का जीवन धारण कर लिया। पंचम स्कन्ध का यह छठा अध्याय उनकी पार्थिव कथा को समापन तक पहुँचाता है।

यह राजा परीक्षित के एक गहन प्रश्न से आरम्भ होता है — कि भगवान्, जो समस्त आवश्यकता से परे थे, उन योग-सिद्धियों को स्वीकार क्यों नहीं करते जो बिना माँगे उन्हें प्राप्त हुई — और श्रीशुकदेव के उत्तर के माध्यम से यह चंचल मन के विषय में एक गहन चेतावनी, दक्षिण के प्रदेशों में विचरण करते हुए भगवान् के देह-त्याग का वृत्तान्त, और अन्ततः उनकी महिमा का गायन तथा उनकी पावन कथा के श्रवण के अतुलनीय आशीर्वाद को अनावृत करता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् ऋषभदेव का प्रयाण
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को उत्तर देते और कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह समस्त संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों की सभा को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: कोंक, वेंक, कुटक और कर्णाटक के दक्षिणी प्रदेश, तथा कुटकाचल पर्वत का वन, जहाँ भगवान् विचरण करते और अपनी देह त्यागते हैं
- केन्द्रीय विषय: भगवान् ने बिना माँगी योग-सिद्धियों को स्वीकार क्यों नहीं किया; चंचल मन पर विश्वास का संकट; भगवान् ऋषभदेव ने योगियों को शिक्षा देने के लिए किस प्रकार अपनी देह त्यागी; कलियुग के विषय में एक चेतावनी; भारतवर्ष और प्रियव्रत-वंश की महिमा; और उनकी कथा के श्रवण का आशीर्वाद
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 1-19
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय ने भगवान् ऋषभदेव का अपने पुत्रों को दिया गया महान् उपदेश अंकित किया — कि मानव-देह भोग के लिए नहीं, अपितु उस तप और भक्ति के लिए है जो आत्मा को मुक्त करते हैं। उन्हें उपदेश देकर, उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को सिंहासन पर अभिषिक्त किया, घर में रहते हुए ही संसार का त्याग किया, और एक मौन अवधूत के रूप में ब्रह्मवर्त से प्रस्थान किया, प्रत्येक अपमान से अविचलित पृथ्वी पर विचरण करते हुए, और उन योग-सिद्धियों का हृदय से स्वागत न करते हुए जो बिना माँगे उन्हें प्राप्त हुई। यह अध्याय कथा को वहीं से आगे बढ़ाता है, उसी प्रश्न से आरम्भ करते हुए जो उन सिद्धियों के प्रति उनकी उदासीनता से स्वाभाविक रूप से उठता है।

राजा परीक्षित का प्रश्न

राजा परीक्षित ने वह प्रश्न रखा जो उनके हृदय में उठा था। उन्होंने कहा, निश्चय ही, जो आत्मा में रमण करते हैं और जिन्होंने योग से सुदृढ़ ज्ञान की अग्नि से भावी कर्मों के बीज — राग और द्वेष — को भस्म कर दिया है, उनके लिए बिना माँगे प्राप्त होने वाली योग-सिद्धियाँ फिर कभी अनर्थ का स्रोत नहीं बन सकतीं। तब भगवान् ऋषभदेव ने उन्हें स्वीकार क्यों नहीं किया?

विवेको मन पर विश्वास क्यों नहीं करते

श्रीशुकदेव का उत्तर एक ऐसा सत्य प्रकट करता है जिसे प्रत्येक साधक को हृदय में धारण करना चाहिए। उन्होंने कहा, जो तुमने देखा वह पूर्णतया सत्य है; और फिर भी कुछ विवेकी जन ऐसे हैं जो अपने ही चंचल मन पर कभी पूर्ण विश्वास नहीं करते — उतना भी नहीं जितना एक कुशल व्याध किसी फँसे हुए मृग पर करता है। क्योंकि चंचल मन पर रखे गए विश्वास ने बड़े-बड़े संयमी महापुरुषों के कठोर व्रतों तक को भंग कर दिया है। जिस योगी ने मन को अपना मित्र बना लिया, उसका मन सदैव तत्पर रहता है कि काम और उसके पीछे आने वाले शत्रुओं — क्रोध, लोभ आदि — के लिए द्वार खोल दे, ठीक वैसे ही जैसे एक व्यभिचारिणी पत्नी अपने उपपतियों को घर में प्रवेश कराकर अपने ही कुल का नाश करा दे। तब कौन विवेकी मन पर विश्वास करेगा, जो काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह और भय का ही मूल है, और जो आत्मा को अन्तहीन कर्म से बाँध देता है?

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ।

कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद् बुधः ॥ ५ ॥

kāmo manyur mado lobhaḥ śoka-moha-bhayādayaḥ karma-bandhaś ca yan-mūlaḥ svīkuryāt ko nu tad budhaḥ

अर्थ: काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह और भय, तथा कर्म का बन्धन — इन सबका मूल मन ही है। तब कौन विवेकी उस पर विश्वास करेगा? (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 5)

इसी कारण, इसमें भी अपने ही उदाहरण से शिक्षा देते हुए, भगवान् ने — जिनके अधीन प्रत्येक शक्ति थी — योग की सिद्धियों का स्वागत करके चंचल मन को तनिक भी स्थान देने से इनकार कर दिया।

भगवान् अपनी देह त्यागते हैं

भगवान् ऋषभदेव लोकपालों के भी आभूषण थे, फिर भी उनकी दिव्य महिमा दिखाई नहीं दे सकती थी, क्योंकि वह उस विचित्र रूप, वाणी और आचरण से आवृत थी जिसे उन्होंने समस्त सांसारिक सम्बन्धों को त्यागे हुए एक व्यक्ति के रूप में धारण किया था। अब, योगियों को देह-त्याग की कला सिखाने के लिए, उन्होंने अपने मन को पूर्णतया अपने भीतर विद्यमान परम आत्मा में लगाया, अपनी देह का विचार करना ही छोड़ दिया, और सूक्ष्म शरीर के साथ अपने तादात्म्य को भी त्याग दिया।

फिर भी, इस वेश के भीतर भगवान् अपने वास्तविक स्वरूप से कभी विचलित नहीं हुए। देखने में भले ही वे किसी सामान्य बद्ध जीव के समान जड़ और सीमित प्रतीत होते रहे हों, वे भीतर से सर्वदा अस्पर्शित रहे, सदैव उसी परम आत्मा में स्थित जिसकी वे स्वयं शिक्षा दे रहे प्रतीत होते थे। और इसी में एक वचन भी छिपा है, केवल विदाई नहीं: जो कोई भगवान् ऋषभदेव द्वारा दिखाई गई इसी विधि का अनुसरण करके सूक्ष्म शरीर पर से — जो मन और मिथ्या “मैं” व “मेरा” के भाव का आश्रय है — अपनी पकड़ छोड़ना सीख ले, उसे पुनः भौतिक देह धारण नहीं करनी पड़ती। उनका प्रयाण केवल एक अन्त नहीं था; यह उस मिथ्या अहं-भाव में बँधे प्रत्येक जीव के लिए खुला हुआ एक द्वार भी था।

अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्प्रयायविधिमनुशिक्षयन्
स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥

*athaivam akhila-loka-pāla-lalāmo 'pi vilakṣaṇair jaḍavad avadhūta-veṣa-bhāṣā-caritair avilakṣita-
bhagavat-prabhāvo yogināṃ sām̐parāya-vidhim anuśikṣayan sva-kalevaram̐ jihāsur ātmany
ātmānam asam̐vyavahitam anarthāntara-bhāvenānvīkṣamāṇa uparatānuvṛttir upararāma*

अर्थ: यद्यपि वे समस्त लोकपालों में शिरोमणि थे, तथापि इस विचित्र वेश, वाणी और आचरण के कारण वे जड़ और सामान्य बद्ध जीव के समान प्रतीत हुए, जिससे उनकी दिव्य महिमा किसी को दिखाई न दी; फिर भी वे अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप से कभी विचलित नहीं हुए, और केवल योगियों को देह-त्याग की विधि सिखाने के लिए ही, समस्त सांसारिक व्यवहार त्यागकर, उन्होंने अपने प्रकट रूप को त्याग दिया। (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 6)

यद्यपि वे इस प्रकार भीतर से मुक्त थे, उनका दृश्यमान रूप योगमाया की शेष लीला से प्रेरित होकर पृथ्वी पर विचरण करता रहा। दैव से निर्देशित होकर, वे कोंक, वेंक, कुटक और कर्णाटक के दक्षिणी प्रदेशों से होकर गुजरे, और कुटकाचल पर्वत के वन को एक नग्न विरक्त के रूप में, उन्मत्त के समान, बिखरे केशों के साथ और मुख में एक पत्थर का टुकड़ा धारण किए हुए, पार किया।



भीतर से परम आत्मा के साथ एक, भगवान् ऋषभदेव कुटकाचल पर्वत के दक्षिणी वनों में एक मौन, अनासक्त विरक्त के रूप में विचरण करते हैं, उनकी दिव्य महिमा आवृत
(श्लोक 6-7)।

तब, जैसे ही तीव्र वायु में बाँस परस्पर रगड़ खाने लगे, एक भयंकर अग्नि प्रज्वलित हुई और, वन को चारों ओर से घेरकर, वन के साथ-साथ भगवान् ऋषभदेव की देह को भी भस्म कर दिया। इस प्रकार, शान्त वैराग्य में, भगवान् ने उस मर्त्य शरीर को गिरा दिया जिसे उन्होंने कभी अपना माना ही नहीं था।



वायु से हिलते बाँसों की रगड़ से प्रज्वलित एक दावाग्नि वन में फैल जाती है और उस देह को भस्म कर देती है जिसे भगवान् पहले ही भीतर से त्याग चुके थे (श्लोक 8)।

कलियुग के लिए एक चेतावनी

तब श्रीशुकदेव ने एक गम्भीर चेतावनी दी। कलियुग में, जब अधर्म बढ़ता जाएगा, उन्हीं दक्षिणी प्रदेशों का एक मूढ़ शासक, अर्हत् नामक, भगवान् के विचित्र बाह्य आचरण के विषय में सुनकर और उसे बिना समझे अनुकरण करके, तथा भावी घटना से मोहित होकर, अपने ही निर्धारित कर्तव्य के सुरक्षित मार्ग को त्याग देगा और अपनी ही मनमानी से एक भ्रान्त और पाखण्डपूर्ण मत का प्रचार करेगा। उसके द्वारा प्रेरित और भगवान् की ही मोहिनी शक्ति से विभ्रान्त होकर, अनेक अभागे जीव शास्त्र-विहित शुद्धता और सदाचार के मानकों से गिर जाएँगे। अपनी ही इच्छा से अशुद्ध आचरण अपनाकर — स्वच्छता की उपेक्षा करके, पावन नियमों को त्यागकर — वे, युग से विकृत बुद्धि के कारण, वेद, ब्राह्मणों, भगवान् विष्णु और उनके भक्तों की निन्दा करने लगेंगे। अपने ही मनमाने, वेद-असमर्थित और अन्धानुकरण से ग्रहण किए गए जीवन-मार्ग से अपने उद्धार का विश्वास पाकर, वे अपनी ही इच्छा से अन्धकार में गिर जाएँगे। यह चेतावनी किसी जन-समुदाय की निन्दा के रूप में नहीं, अपितु एक सावधानी के रूप में खड़ी है: किसी सन्त के आन्तरिक साक्षात्कार के बिना उनके बाह्य रूप का अनुकरण करना मार्ग को पूर्णतया खो देना है।

उनके अवतरण का प्रयोजन

श्रीशुकदेव ने बताया, भगवान् का यह अवतरण सर्वोपरि इसीलिए था कि वे रजोगुण में लिप्त लोगों को आत्म-मुक्ति की कला सिखा सकें — एक ऐसे रूप में, जिसे वे देख सकें, यह दिखाने के लिए कि कर्म में निमग्न जीवन भी पूर्णतया मुक्ति की ओर मोड़ा जा सकता है।

भारतवर्ष और प्रियव्रत-वंश की महिमा

इसी के अनुरूप, श्रीशुकदेव ने कहा, लोग भगवान् के अवतरण की स्तुति में श्लोक गाते हैं। पृथ्वी के समस्त द्वीपों और वर्षों में, जो सात समुद्रों से घिरी है, यह भूमि — भारतवर्ष — सर्वाधिक पावन है, क्योंकि यहाँ इसके निवासी भगवान् विष्णु, मुर-दैत्य के संहारक, के मंगलमय कर्मों का, जो उनके अनेक अवतारों में प्रकट हुए, गान करते हैं।

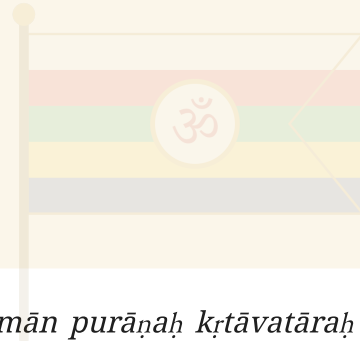
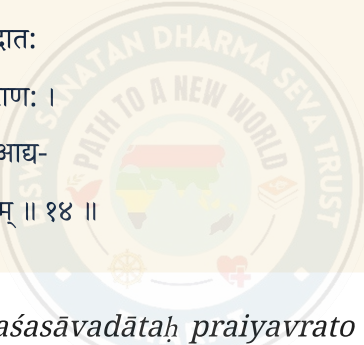
अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ १३ ॥

aho bhuvaḥ sapta-samudravatyā dvīpeṣu varṣeṣv adhipuṇyam etat gāyanti yatratya-janā murāreḥ karmāṇi bhadraṇy avatāravanti

अर्थ: अहो, सात समुद्रों से घिरी इस पृथ्वी के समस्त द्वीपों और वर्षों में यह भूमि सर्वाधिक पावन है, क्योंकि इसके निवासी मुरारि (भगवान्) के उन मंगलमय कर्मों का गान करते हैं जो उनके अनेक अवतारों में सम्पन्न हुए। (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 13)

और सबसे बढ़कर धन्य, श्लोक आगे कहता है, है प्रियव्रत का वंश, यश से देदीप्यमान — क्योंकि इसी वंश में अवतरित होकर परम पुरातन पुरुष, स्वयं भगवान् नारायण, समस्त के अन्तर्यामी और समस्त कारणों के कारण, ने जन्म लिया और उन पावन व्रतों का आचरण किया जो मुक्ति की ओर ले जाते हैं।

अहो नु वंशो यशसावदातः
प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः ।
कृतावतारः पुरुषः स आद्य-
श्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥



aho nu vaṁśo yaśasāvadātaḥ praiyavrato yatra pumān purāṇaḥ kṛtāvatāraḥ puruṣaḥ sa ādyaś cacāra dharmam yad akarma-hetum

अर्थ: अहो, यश से देदीप्यमान है प्रियव्रत का वंश, जिसमें स्वयं परम पुरातन पुरुष अवतरित हुए और उस धर्म का आचरण किया जो समस्त कर्म से परे मुक्ति की ओर ले जाता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 14)



भारतवर्ष के भक्त जन भगवान् के मंगलमय कर्मों और प्रियव्रत-वंश की महिमा का गान करते हैं, जिसमें स्वयं पुरातन पुरुष अवतरित हुए (श्लोक 13-14)।

वे पदचिह्न जिनका कोई अनुसरण नहीं कर सकता

तब वह उत्तर आता है जो परीक्षित के प्रारम्भिक प्रश्न पर लौटता है। विवेकी पूछते हैं, कौन अन्य योगी उस अजन्मा भगवान् के मार्ग का — मन से भी — अनुसरण कर सकता है, जिन्होंने योग की उन्हीं सिद्धियों को मिथ्या जानकर ठुकरा दिया, जिन्हें अन्य साधक अपने समस्त बल से प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं?

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे-

न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।

यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता

ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १५ ॥

*ko nv asya kāṣṭhām aparo 'nugacchen mano-rathenāpy abhavasya yogī yo yoga-māyāḥ
spṛhayaty udastā hy asattayā yena kṛta-prayatnāḥ*

अर्थ: कौन अन्य योगी उस अजन्मा भगवान् के मार्ग का, मन से भी, अनुसरण कर सकता है, जिन्होंने उन्हीं योग-सिद्धियों को असत् जानकर त्याग दिया जिन्हें पाने के लिए अन्य साधक इतना कठोर प्रयत्न करते हैं? (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 15)

उनकी कथा के श्रवण का आशीर्वाद

इस प्रकार, श्रीशुकदेव ने कहा, ऋषभ नामधारी भगवान् की शुद्ध और पावन कथा कही गई है — जो समस्त वेदों, लोकों, देवताओं, ब्राह्मणों और गौओं के परम पूज्य हैं — एक ऐसी कथा जो सुनने अथवा गान करने वालों के समस्त पापों को धो देती है, और सर्वोच्च मंगल का निवास है। जो इसे श्रद्धा और एकाग्र मन से सुनता है, और जो इसे प्रेमपूर्वक दूसरों को सुनाता है, उसके हृदय में भगवान् वासुदेव के प्रति अनन्य भक्ति जागृत

होती है।

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं
परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्वियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ ॥

*yasyām eva kavaya ātmānam avirataṁ vividha-vṛjina-saṁsāra-paritāpopatapyamānam
anusavanam snāpayantas tayaiva parayā nirvṛtyā hy apavargam ātyantikam parama-
puruṣārtham api svayam āsāditam no evādriyante bhagavadīyatvena eva parisamāpta-
sarvārthāḥ*

अर्थ: इसी भक्ति में विवेकी जन, नाना संसार-तापों से जलते हुए अपने आत्मा को निरन्तर स्नान कराते हुए, और उसी में परम आनन्द पाते हुए, परम मुक्ति की भी — जो मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है — परवाह नहीं करते, चाहे वह बिना माँगे प्राप्त हो; क्योंकि, पूर्णतया भगवान् के हो जाने से, वे अपने समस्त अभीष्ट भक्ति में ही प्राप्त कर चुके होते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 6, श्लोक 17)

भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार

श्रीशुकदेव ने परीक्षित को उनके अपने कुल के सौभाग्य का स्मरण कराते हुए समापन किया: स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही उनके पितामहों और यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, आराध्य देव, प्रिय मित्र और कुल के प्रधान रहे थे — और कभी-कभी उनके दूत तक बने। वही भगवान् अपने उपासकों को परम मुक्ति तक प्रदान करते हैं, फिर भी अपने चरणों की प्रेममयी भक्ति का उससे भी बड़ा उपहार विरले ही देते हैं। और इस प्रकार यह अध्याय एक नमस्कार के साथ समाप्त होता है: उन तेजस्वी भगवान् ऋषभदेव को प्रणाम, जो समस्त कामनाओं से रहित हैं, सदा अपने ही आत्मा के साक्षात्कार में पूर्ण हैं, और जिन्होंने अपार करुणा से आत्मा के निर्भय, सच्चे स्वरूप को उन मनुष्यों के समक्ष प्रकट किया जिनके मन दीर्घकाल से देह और आत्मा से भिन्न वस्तुओं के चिन्तन में खोए हुए थे।



श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित के समक्ष भगवान् ऋषभदेव की पावन कथा का समापन करते हैं, उन करुणामय भगवान् को नमस्कार अर्पित करते हुए जिन्होंने आत्मा के सच्चे स्वरूप को प्रकट किया (श्लोक 18-19)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

मन पर कभी अन्धा विश्वास नहीं करना चाहिए। दीर्घ अभ्यास के पश्चात् भी विवेकी जन चंचल मन के प्रति सतर्क रहते हैं, जो काम, क्रोध और प्रत्येक बन्धन का मूल है। सतर्कता, आत्म-सन्तोष नहीं, साधक को सुरक्षित रखती है।

वैराग्य योग-शक्ति से भी सच्चा बल है। ऋषभदेव ने उन्हीं सिद्धियों को ठुकरा दिया जिन्हें पाने के लिए अन्य जन जन्म-जन्मान्तर प्रयत्न करते हैं। शक्ति का स्वामी होकर भी उसके प्रति पूर्णतया उदासीन रहना उसे प्रयोग करने से कहीं बड़ी महानता है।

सन्त के बाह्य रूप का अनुकरण मार्ग नहीं है। कलियुग की चेतावनी यह है कि किसी सिद्ध आत्मा के आन्तरिक साक्षात्कार के बिना उनके बाह्य आचरण की नकल केवल अन्धकार की ओर ले जाती है। हृदय का रूपान्तर, न कि बाह्य प्रदर्शन, ही महत्त्वपूर्ण है।

यह भूमि और यह मानव-जन्म एक दुर्लभ आशीर्वाद हैं। श्लोक भारतवर्ष को सर्वाधिक पावन बताते हैं क्योंकि यहाँ भगवान् के कर्मों का स्मरण और गान होता है। जहाँ उनका नाम गाया जाता है वहाँ जन्म लेना, और उस गान में सम्मिलित होना, मापने से परे सौभाग्य है।

भक्ति स्वयं अपना पुरस्कार है। शुद्ध भक्त, प्रेममयी सेवा के आनन्द में निमग्न, मुक्ति के प्रस्तुत होने पर भी उसकी ओर हाथ नहीं बढ़ाता। स्वयं को पूर्णतया भगवान् को अर्पित करके, वह पहले ही सब कुछ पा चुका होता है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

भगवान् की पार्थिव कथा जिस रीति से समाप्त होती है उसमें एक गहरी कोमलता है — सिंहासन पर किसी विजय में नहीं, अपितु मौन में, एक वन में, अपनी देह को उतनी ही शान्ति से त्यागते हुए जितनी शान्ति से कोई यात्री एक बोझ रख देता है। ऋषभदेव ने अग्नि के स्पर्श से बहुत पहले ही अपनी देह को भीतर से त्याग दिया था; लपटों ने केवल वही पूर्ण किया जिसे उनके वैराग्य ने सिद्ध कर दिया था। यही वह स्वतन्त्रता है जिसकी ओर यह समस्त अध्याय संकेत करता है: अपनी देह को भी हल्के से धारण करना, अपनी नहीं अपितु उधार ली हुई वस्तु के समान,

क्योंकि हम स्वयं को भीतर स्थित अमर आत्मा जानते हैं। और श्रीशुकदेव के समापन-वचन हमें कोमलता से पुनर्दिशित करते हैं। समस्त कथा का प्रयोजन दूर से प्रशंसा नहीं है — क्योंकि उस अजन्मा भगवान् के मार्ग का अनुसरण कौन कर सकता है? — अपितु उनकी महिमा के श्रवण और गान से हमारे अपने हृदयों में भक्ति का जागरण है। हम उनके समान संसार का त्याग नहीं कर सकते। किन्तु हम सुन सकते हैं; हम स्मरण कर सकते हैं; हम उनका नाम गा सकते हैं। और उस सरल साधना में, वही शान्ति जो उन्हें अग्नि के पार ले गई, चुपचाप हममें भी जड़ पकड़ने लगती है।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, कुछ अविचल क्षण निकालकर भगवान् की एक पावन कथा को सुनिए अथवा पढ़िए — एक श्लोक, एक कथा, भागवत का एक अंश — और तब, यदि सम्भव हो, उसे किसी एक अन्य व्यक्ति के साथ स्वर में बाँटिए, अथवा केवल भगवान् का नाम मृदुता से अपने आप से कहिए। ऐसा करते हुए, श्रीशुकदेव के इस वचन का स्मरण कीजिए कि जो हृदय भक्ति-भाव से इसे सुनता और गुनगुनाता रहता है, उसमें भगवान् के प्रति प्रेम धीरे-धीरे स्वयं ही जग उठता है। इसे आज के दिन की अपनी छोटी भेंट बनने दीजिए — किसी पुरस्कार की खोज में नहीं, अपितु शुद्ध भक्त के समान, उस स्मरण के आनन्द में ही विश्राम करते हुए।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का षष्ठ अध्याय भगवान् ऋषभदेव की पार्थिव कथा को शान्त समापन तक पहुँचाता है। राजा परीक्षित को उत्तर देते हुए, श्रीशुकदेव बताते हैं कि भगवान् ने बिना माँगे प्राप्त हुई योग-सिद्धियों को क्यों ठुकराया: क्योंकि विवेकी जन चंचल मन पर कभी विश्वास नहीं करते, जो प्रत्येक बन्धन का मूल है, और भगवान् इसे भी अपने ही उदाहरण से सिखाना चाहते थे। तब, योगियों को देह-त्याग की कला सिखाने के लिए, ऋषभदेव पूर्णतया भीतर के परम आत्मा की ओर मुड़ गए, और दक्षिण के सुनसान वनों में मौन भाव से घूमते हुए एक विरक्त की भाँति, बिना किसी विचलन के अपने मर्त्य शरीर को एक दावाग्नि में भस्म होने दिया। श्रीशुकदेव चेतावनी देते हैं कि कलियुग में कुछ लोग उनके आन्तरिक साक्षात्कार के बिना उनके बाह्य आचरण का अनुकरण करके अन्धकार में गिर जाएँगे — यह हृदय के रूपान्तर की खोज करने की, न कि बाह्य प्रदर्शन की, चेतावनी है। वे भारतवर्ष और प्रियव्रत-वंश की महिमा गाते हैं, जिसमें स्वयं पुरातन भगवान् अवतरित हुए, और घोषित करते हैं कि कोई अन्य योगी उस अजन्मा भगवान् के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता। और वे सबसे मधुर आश्वासन के साथ समाप्त करते हैं: कि जो हृदय इस पावन कथा को श्रद्धा से सुनता और गान करता है, उसमें भगवान् के प्रति शुद्ध भक्ति जागृत होती है — इतनी पूर्ण भक्ति कि भक्त मुक्ति की ओर भी हाथ नहीं बढ़ाता, भगवान् में पहले ही सब कुछ पा लेने से।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), पंचम स्कन्ध, षष्ठ अध्याय, “Lord Rsabha quits His body,” पृष्ठ 460–462।

- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-6-the-departure-of-lord-rsabhadeva-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

